फिर वही मधुमास

■मधुर गंजमुरादाबादी

तुम रहे जब पास मेरे, तुम रहे जब पास।
याद आया फिर वही मधुमास ।।

एक तुम बिन लग रहीं सूनी
व्यस्त मेरे गाँव की गलियाँ,
चिटक करके ये न जाने क्या
कह रहीं कचनार की कलियाँ ।
तपन सी मन में जगाती है,
बह रही ये मधु-मदिर बातास ।

कामनाओं को जगाती सी
चैन मेरे हृदय का हरती,
यह किसी अल्हड़ किशोरी सी
सुरभि भी अठखेलियाँ करती ।
एक गहरी टीस सी बनकर,
खरकती मन में कँटीली फाँस ।

मोह लेते थे कभी मन को
जो सजीले रंग उपवन के,
हो गए हैं सब तुम्हारे बिन
दृश्य जैसे कंटकित वन के ।
रास सुमनों और मधुपों का,
तनिक भी मुझको न आता रास ।

वे सभी रससिक्त मदमाते
दिवस अनगिन विगत वर्षों के,
पीतवर्णी हो गए हैं सब
बन गए हैं फूल सरसों के ।
दूर निर्जन घाटियों में अब
टेरता सा लग रहा संन्यास ।

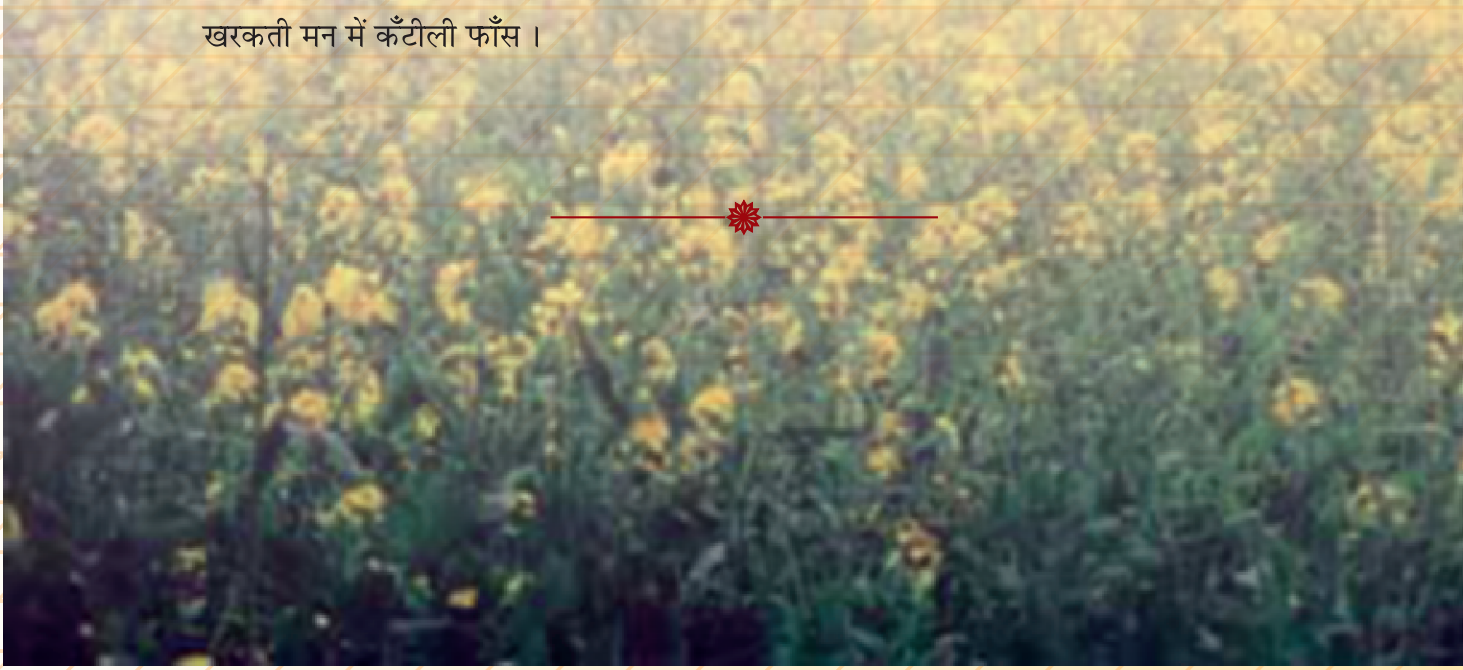

■गंज मुरादाबाद, उन्नाव, उत्तरप्रदेश-241502

....और सवेरा हो गया

■बा.शे. दिवाकर

मैं भी रात भर सो नहीं पायी थी, बारंबार विगत जीवन फिल्म के समान आंखों के आगे घूम जाता था। मैं सही कदम उठाने जा रही थी या नहीं, मैं समझने में असमर्थ थी। पूछती तो किससे? और रह भी कौन गया था उसके अलावा और फिर धीरेन से ही मैं क्या पूछती कि मैं उसी से विवाह करूं या नहीं?

जैसे तैसे आंखों में रात गयी, पौ अभी फटी नहीं थी कि यकायक दरवाजा खड़क उठा। दृष्टि सीधी दीवार घड़ी की ओर उठ गयी, सुबह के पांच बजे थे। मैं दरवाजा खोलने को लपक उठी, ''अरे! धीरेन है क्या? उससे पूर्णतया सुबह होने का भी इंतजार नहीं हुआ था क्या?

दरवाजा खोलने को उठा मेरा हाथ एक बारगी थम गया, हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था बिना इस निर्णय के कि तेज धड़कन प्रसन्नता की थी या कि भय जनित क्योंकि आज धीरेन मेरे जीवन में एक बार फिर आमूल-चूल परिवर्तन कर डालने के लिये आ रहा था।

भय इस बात का था कि ऐसी ही एक और रात के अंत में भी आया वो और मेरे बिखरे जीवन के अत्यधिक कठिनाई से सिमटते धागों को एक बार फिर छिन्न-भिन्न कर गया था, बिना मेरा अहित चाहे भी।

दरवाजा फिर खड़का और मैंने आगे बढ़कर खोल दिया। सामने धीरेन खड़ा था। लगा अकेला है आज। मन ने एक शांति की सांस ली। शुक्र है वरना उस रात के अंत में तो वो अकेला नहीं अपितु अपने साथ मेरे जीवन का एक भूला-बिसरा पूरा अध्याय उठा लाया था।

.....धीरेन काली सी, मरियल सी, बड़ी-बड़ी आंखों वाली लड़की की चोटियां पीछे से खींचता कहता था, ''चिंदी! चल मेरे साथ खेल !'' उत्तर में अपने हाथ में पकड़े गीले कपड़े से अपनी माँ के मांजे हुए बरतन पोंछती वो कहती ''बेवकूफ! गधे! धीरू के बच्चे! देखता नहीं मैं काम कर रही हूँ..... थोड़ी देर में खेलूंगी....''

''थोड़ी देर में तो तू अपनी मां के साथ वापस घर चली जायेगी।'' वो जिद करता और चिढ़कर दुबारा फिर चिंदी की चोटी खींच भाग लेता । वो भी कहां कम थी, अपने सब्र का दामन पूर्णतया छोड़, धीरू के पीछे भागती जब तक दो चार घूंसे जड़ ना दे उसे कहां आराम आता था, फिर चाहे अपनी मां से वापस मार ही क्यों ना खानी पड़ जाए, ''छोकरी की हिम्मत तो देखो! लाला जी के बेटे को ही मार रही है.....कमबख्त काम से निकलवायेगी!''

■एफ-I-295, मदनगीर, नई दिल्ली-110062

एक रात सोने से पहले दस वर्षीय धीरू ने अपनी मां से कहा, ''मां! चिन्दी मेरे साथ अधिक देर क्यों नहीं खेल सकती?''

''क्योंकि उसको अपनी मां के काम में हाथ बंटाना होता है-.....'' मां ने कहा। ''मां! चिन्दी हमारे घर में ही क्यों नहीं रह सकती! फिर तो मैं सदैव ही उसके साथ खेल सकूंगा! बड़ा मजा आयेगा ना !''

''नहीं धीरेन ऐसा नहीं होता। उसका घर उसका होता है और हमारा, हमारा और फिर यदि हम उसे अपने घर में रख भी लें तो उसकी मां उसे याद कर रात में रोयेगी या नहीं, कहो तो?'' मां की बात से निरुत्तर धीरू चुपचाप सो गया।

एक दिन अचानक चिंदी अत्यधिक सजी-धजी, मां के साथ धीरू के घर आयी परन्तु धीरेन के पास भी नहीं फटकी। कहा, ''मेरे कपड़े खराब हो जायेंगे!'' धीरेन परेशान था। अपनी मां से पूछने पर पता चला कि चिंदी की सगाई कर दी गयी थी और कुछ समयोपरांत वो विवाह कर अपने घर चली जायेगी।

''परन्तु अभी भी तो वो अपने घर में ही रहती है ना!'' धीरू ने चिढ़ते हुए ही पूछा था।

''तुम बुद्धू हो धीरू! तुम्हें कुछ पता नहीं ''मां ने कहा, ''विवाहोपरांत तो सभी लड़कियों को अपने पति के घर जाना ही पड़ता है। ''धीरेन की समझ से बाहर था कि ऐसा करना क्यों अनिवार्य था। फिर बोला, ''मां क्या आप उसे प्यार नहीं करती हो?.....'' मां के हां में सिर हिला देने पर, ''तो फिर सदा के लिये उसे अपने घर में ही रख लो ना!''

''बेटा! वो हमारे घर में स्थायी तौर पर कैसे रह सकती है भला? ऐसा लड़कियां केवल विवाहोपरांत ही कर सकती हैं.....

.....और भला हमारे घर में उससे विवाह कौन करेगा, आप या आपके पिताजी?'' मां थोड़ी ठिठोली कर उठी थी।

धीरू क्षण मात्र चुप रहा फिर, ''और यदि मैं उससे विवाह कर लूं तो?.....फिर तो वो हमारे साथ रह पायेगी ना! और उसे कहीं भी दूर नहीं जाना पड़ेगा।'' धीरू की मां अपनी सास से मुंह दबाकर हंसती बोली, ''मां जी। सुन रही हैं!.....आपका दस वर्षीय पोता, बारह वर्षीय चंद्रा से विवाह करना चाह रहा है, अभी से!'' फिर धीरेन को कसकर छाती से लगाते, ''आप अभी बहुत छोटे हो विवाह को समझने के लिये, कि विवाह अपने जैसों से ही किया जाता है। मैं चंद्रा को अपने बच्चों के समान चाहने के बावजूद भी अपने घर में नहीं रख सकती।'' निरुत्तर धीरू एक आध दिन में ये सभी कुछ भूल गया। चंद्रा मां के साथ उसके घर काम करने आती रही, जाती रही।

विवाह समीप आ जाने के कारणवश चंद्रा का घर में आना जाना करीब-करीब समाप्त हो जाने से अकेला रह गया धीरू काफी परेशान हो उठा था।

विवाह वाले दिन भी वो अपनी मां के साथ चिंदी के घर गया था परन्तु और औरतों और लड़कियों से घिरी होने के कारण वो चिंदी के नजदीक जा ही नहीं पाया और मन ही मन कुढ़ता रहा। दूसरे दिन सुबह भी वो चिन्दी के नजदीक ना जाकर दूर से ही उसे ससुराल ना जाने के लिये कहता रहा परन्तु चिंदी सबकी निगाह बचाते उसे जीभ दिखाती, डोली में अति प्रसन्न बैठ कर चली गयी जैसे कहीं सैर करने जा रही थी।

अनजाने में ही जैसे धीरू के जीवन का एक अध्याय समाप्त हो गया था और वो काफी एकाकी रह गया था क्योंकि गांव के बड़े लाला का इकलौता पुत्ररत्न होने के नाते उसे साधारण बच्चों की भांति बाहर गलियों में खेलने जाना मना था और हम उम्र साथियों से खुलकर बात करने का उसका स्वभाव ही नहीं था।

धीरू, धीरे-धीरे बड़ा होने के साथ-साथ ही अत्यधिक संकोची होता गया। स्कूल जाना, घर वापस आना और फिर स्कूल का काम निपटाने के पश्चात् बचा पूरा समय दुकान पर अपने पिता की मदद करने में व्यतीत करना आदि, यही उसकी दिनचर्या रह गयी थी।

समय की अपनी गति होती है अविरल-अबाध, किसी के भी हर्षोल्लास या दुख दर्द, अकेले पन से उसे कोई लेना-देना नहीं होता उसे तो बस चलते ही जाना

होता है। समयान्तर से व्यक्ति आते हैं जाते हैं, किसी की खुशियां बढ़ जाती हैं तो किसी के गम आदि।

''धीरू'' कहें तो धीरेन अब उन्नीस वर्ष का सुदर्शन युवक बन चुका था। लंबी ऊंची कद काठी, व्यायाम से इकहरा सुडौल शरीर और अत्यधिक गोरे रंग पर काली-काली दाढ़ी और मूछें सब कुछ मिलाकर, धीरेन को एक बार देखने वाला मुड़ कर दुबारा देखने की इच्छा अवश्य ही करता था।

फिर एक दिन अचानक दुकान से लौटते समय मंदिर की सीढ़ियों पर अपनी दिनचर्यानुसार कुछ देर आराम कर वो उठ कर चला ही था जब, ''छोटे लाला.....!'' उसने मुड़ कर देखा कि सीढ़ी से उतर रही थी एक बड़ी संभ्रान्त सी दिखने वाली नवयौवना, ''पहचाना.....? मैं चिन्दी!....तुम तो ऐसे खड़े हो जैसे भूत देख लिया हो।''

कहां चली गयी थी बचपन की वो काली सी, बड़ी-बड़ी आंखों वाली मरियल सी लड़की!.....ये लड़की तो रंग पक्का होने के बावजूद भी वो सभी कुछ थी जिसकी कामना कोई भी पुरुष कर सकता था। माथे पर बिन्दी, सूती मगर सुन्दर और सुरूचिपूर्ण साड़ी, भरा-भरा सा शरीर और आंखें वही पुरानी परन्तु शरारत के स्थान पर भरे पूरे समुद्र की गहरायी लिये हुए थीं।

धीरेन उसे एकटक देखता रह गया केवल क्षण मात्र, फिर बोल उठा! ''तुम भूत ही तो हो चिंदी का....!. ...चंद्रिका! तुम कितनी बदल गयी हो!''

''तो अब मैं चिन्दी से चंद्रिका बन गयी हूँ....तुम भी तो बिल्कुल ही बदल गये हो ना.....'' उसकी बात कट गयी,

''अच्छा तो मेरा नाम भी भूल गयीं तुम, मुझे भी तो तुमने धीरू से छोटा लाला बना दिया है ना.....''

दोनों साथ-साथ चलते अपने घरों की ओर रवाना हो गये। बचपना बारंबार उनकी बातचीत में लौट आना चाहता था परन्तु दोनों के बीच एक अदृश्य दीवार सी खिंची थी। अब धीरेन एक पर पुरुष और चंद्रिका किसी और की ब्याहता मात्र थी।

फिर कुछ समय तक दोनों का यहां-वहां आमना-सामना होता रहा और धीरे-धीरे अपने अकेलेपन के अत्यधिक अहसास के साथ ही चंद्रा की दुर्भाग्य गाथा से भी वो अवगत् होता गया था।

मनोहर, चंद्रा के पति, की मरणासन्न मां की अपने बेटे का विवाह देख पाने की लालसा स्वरूप ही नौंवी कक्षा में पढ़ रहे मनोहर का विवाह चंद्रा से कर दिया गया था। सास-ससुर को अपनी सेवा से पूर्ण प्रसन्न रख कर भी मनोहर को वो रिझा नहीं पायी थी क्योंकि चंद्रा के साथ विवाह स्वरूप इतनी अल्पायु में ही उसकी स्वतंत्रता छिन गयी थी।

अपनी मां के निधन से पूर्णतया टूट कर चंद्रा को पति-पत्नी संबंध समझा पाने से पूर्व ही वो घर छोड़ कर भाग गया था। यूं तो चंद्रा की सास के स्वर्गवासी होने के पश्चात् वो संभाले नहीं संभलता था, लड़ना, झगड़ना, गुस्सा आदि उसकी रोज की दिनचर्या में शामिल थे परन्तु जिस दिन भागा था उस दिन बड़ी रात गये तक वो चंद्रा के साथ ढेर सारी बातें करता रहा था। चंद्रा प्रसन्न थी'' चलो कुछ सुधरा तो सही!'' सो सुबह खुशी-खुशी उठ कर पाया कि चंद्रा के सिरहाने पत्र रख कर वो नदारद हो चुका था।

सात वर्ष बीत चुके थे उसे लापता हुए। चंद्रा के ससुर उसे ढूंढने का अनवरत् प्रयास करते असमय ही स्वर्ग सिधार गये थे। बस एक ही काम बढ़िया हुआ था मनोहर की अनुपस्थिति में, आरंभ में चंद्रा के प्रति थोड़ा क्रोध, दोषारोपण और खिंचाव के पश्चात् चंद्रा की निष्काम सेवा से उन्होंने अपना पूरा स्नेह और दुलार चंद्रा पर पुत्रीवत् लुटा दिया था। उन्होंने चंद्रा को ओपन स्कूल' से बारहवीं पास करवा कर अपने स्वर्गवास से कुछ पूर्व ही अपना छोटा सा मकान उसके नाम कर और साथ ही आंगनबाड़ी में उसे काम दिलवा कर चंद्रा की वित्तीय स्वतंत्रता का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया था।

चंद्रा और धीरेन मिलते रहे यहां-वहां। आरंभ में चंद्रा काफी खिंची-खिंची रही पर फिर अंततः अभ्यस्त हो गयी और उनका परस्पर व्यवहार काफी सरल हो उठा। दोनों को प्रतीत होता था कि कुछ घटित होने को है

परन्तु परस्पर शालीनता बनाये रखते हुए भी दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित होने से स्वयं को रोकने में असमर्थ थे।

इसी प्रकार उधेड़बुन में दो वर्ष और बीत गये। दोनों का कोई काम एक दूसरे की सलाह बिना पूरा होता ही नहीं था, बेशक किसी भी बाहर वाले की निगाहों में चढ़े बगैर ही परन्तु इसी बीच चंद्रा की मां और धीरेन के पिता भी चल बसे और दुकान मकान और घर बार सभी कुछ धीरेन के कंधों पर आ गया था।

अपनी मां के रोज-रोज उसे विवाह बंधन में बांध देने के अनुरोध, उसके अपने अत्यधिक शर्मीलेपन और चंद्रा की हां ना के बीच झूलते धीरू का बांध एक दिन टूट ही गया और उसने चंद्रा के सम्मुख विवाह प्रस्ताव रख ही दिया बेशक डरते-डरते ही कि कहीं वो ना करके उन दोनों के बीच रोज मिलने वाले बेशक अल्पतम् समय के सान्निध्य से भी उसे वंचित ना कर दे।

सुन कर चंद्रा कुछ क्षण जड़वत् खड़ी रह गयी, ''धीरेन! मैं तुमसे कितना भी स्नेह क्यों ना करूं परन्तु सत्य यही है कि मैं तुमसे दो वर्ष बड़ी हूँ। मैं हूं क्या..... .सधवा या विधवा?.....मुझे नहीं पता! तुम्हारी मां मुझ पर कितना ही स्नेह भाव क्यों ना रखती हो। परन्तु वो भी मुझे इन परिस्थितियों में पुत्रवधू रूप में स्वीकार शायद ही कर पायें....''

फिर बात काटने को उद्यत धीरू के मुंह पर हाथ रखते, ''फिर बचपन में हमारे बीच रहे अबोध, सहज स्नेहमात्र के बल पर और मेरी दुर्भाग्य कथा सुन कर मेरे प्रति तुम पर कोई कर्ज-फर्ज जैसी वस्तु नहीं बनती जो तुम्हें मुझसे, मुझपर दया स्वरूप विवाह करने को बाध्य कर सके।'' एक सांस में सभी कुछ बक कर चंद्रा चुप कर गयी थी।

''चिन्दी!''.....धीरेन का प्रत्युत्तर था, ''तुम्हें चंद्रा ना कहने से शायद तुम्हें मेरी बात की प्रामाणिकता पर विश्वास आ जाए बचपन याद करके। बाकी रही दुर्भाग्य कथा, वैधव्य, दया, कर्ज और फर्ज इत्यादि के लंबे चौड़े शब्द जंजाल में ना फंस कर मुझे केवल इतना ही पता है कि मैं तुम्हें संसार की सबसे सुखी लड़की बना कर तुम्हारे कल की प्रत्येक परछांई को नेस्तनाबूद कर देना चाहता हूँ! बस तुम एक बार हाँ कह दो!''

''धीरेन! मुझे तुम पर नहीं परन्तु अपने भाग्य पर संदेह है। इतना सुख! और मेरे भाग्य में!.....विधि को मंजूर होगा क्या?'' धीरेन ने हिम्मत करते उसके दोनों हाथ अपने हाथों में जकड़ते कहा, ''सोचो कुछ नहीं, मेरा विश्वास करो बस!....मैं सब कुछ संभाल लूंगा। बस मुझे स्वीकार करो!''

''ठीक है धीरेन आज रात भर और अच्छी तरह सोच लो। कल सुबह भी यदि तुम्हारा प्रस्ताव अपनी जगह अडिग रहे तो मुझे तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार होगा।'' धीरेन ने हां में सिर हिला दिया, ''मैं सुबह ही आकर तुम्हें ले जाऊँगा, बस!'' घर करीब आ गया था और दोनों अलग-अलग, अपने-अपने रास्ते चले गये थे।

ज्यों-त्यों प्रतीक्षा की वो कठिन रात का अंत हुआ था, सुबह आने को थी, दरवाजे की कुंडी भी खड़की थी और धीरेन भी आया था परन्तु उसके आने ने चंद्रा के बड़ी कठिनाई से सिमटते जीवन के छिन्न-भिन्न तारों को एक बार फिर तार-तार कर दिया था, क्योंकि वो स्वयं अकेला नहीं अपितु किसी को सहारा दिये साथ लाया था।

''कौन है?'' चंद्रा ने सशंकित होते पूछा था, ''मैं पूरी तरह सुबह होने की प्रतीक्षा ना करके मुंह अंधेरे ही घर से तुम्हारे पास आने के लिये चल पड़ा था, रास्ते में तालाब के पास गिरे पड़े इससे मैं टकरा कर गिरते-गिरते बचा....'' धीरेन की बात कट गयी। ''और तुम इसे यहां उठा लाये!....यहां इसका क्या काम...!'' चंद्रा कुछ तुर्शी से बोल रही थी।

''ये बहुत बीमार है। थोड़ा होश में था यह जब मैं इससे टकराया था और इसने तुम्हारा नाम पता बता कर, मुझसे इसे तुम्हारे घर पहुंचा देने का अनुरोध किया. ....और मैं इन्कार नहीं कर पाया....''

चंद्रा जड़वत् खड़ी रही क्षण भर फिर ध्यान से उस बीमार व्यक्ति की ओर देखा और पलटते माथा पीट लिया। जब मनोहर घर से भागा था तब वो बहुत छोटा था। अब अधिक समानता ना होने पर भी ध्यान से देखने से

अभी भी आसानी से पहचाना जा सका था, ''मनोहर!'' केवल यही एक शब्द निकला चंद्रा के मुंह से।

हां वो मनोहर ही था! धीरेन डाक्टर बुलाने भागा गया और होश में आने के पश्चात् मनोहर ने इतने वर्षों के पश्चात चंद्रा के जीवन में पुन: प्रवेश कर फिर उथल पुथल मचाने के लिये बार-बार क्षमा प्रार्थना की चंद्रा के उसे रोकने के बाद भी।

चंद्रा और धीरेन की लगातार सेवा और पूरी डाक्टरी सहायता के बावजूद अपनी असाध्य और भयंकर बीमारी के कारण दूसरे दिन सुबह ही मनोहर स्वर्गवासी हो गया था।

ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वो केवल चंद्रा से माफी मांगने के लिये ही अपने मरणासन्न दशा में भी वहां आ पहुंचा था। बाकी सभी संस्कार कर्म, कोई और करीबी रिश्तेदार के अभाव में धीरू ने ही निपटा दिये थे।

चंद्रा इस घटना के पश्चात् बिल्कुल ही जड़ हो गयी थी। यदि धीरेन की मां ने उसे संभाल ना लिया होता तो जाने परिणाम क्या हुआ होता। छ: माह फिर व्यतीत हो चुके थे, परन्तु धीरेन और चंद्रा के बीच एक दीवार सी फिर पनप उठी थी। जैसे-जैसे धीरेन उचक कर उस दीवार के पार देखना चाहता था वो और ऊँची होती जाती थी, दिन प्रतिदिन।

अंतत: एक दिन तंग आते हिम्मत कर पूछ ही बैठा, ''अब क्या होगा चंद्रा?''

''धीरेन! कैसा क्या.....कुछ नहीं होगा अब....'' कुछ अटकती सी चंद्रा बोल उठी थी, ''अब मैं मनोहर की विधवा हूँ बस और क्या?''

''चंद्रा! यदि जीवन का रिमोट कंट्रोल मेरे हाथ में होता तो, मेरा विश्वास करो, मैं बेझिझक एक बार फिर सजीव मनोहर को तुम्हारे समक्ष ला खड़ा करता, परन्तु यहीं इंसान असमर्थ हो जाता है.....विधवा होने से क्या जब तुम कभी पूर्णतया सुहागन ही नहीं बन पायी थी। तुम पहले भी मेरी थी और आज भी केवल मेरी ही हो.....केवल तुम्हारे हां में सिर हिला देने की देर है!''

''तुम्हींने तो उस मनोहर रूपी विस्मृत परछांई को एक बार फिर मेरे सम्मुख ला खड़ा किया था!'' कुछ निराशामय उत्तर था।

''तो क्या मैं उसे वहीं मार्ग में ही छोड़ आता!....'' धीरू की बात कट गयी, ''नहीं धीरेन! जैसा तुमने किया उससे अधिक अच्छा तो कोई कर ही नहीं सकता था..... बस फर्क इतना है कि मनोहर नाम का जो पति पात्र मेरे जीवन नाटक में केवल झलक मात्र दिखा कर विलुप्त प्राय हो चुका था, उसे पूरे हाड़मांस के पुतले के रूप में तुमने फिर मेरे आगे जीवंत ला खड़ा किया बस!'' चंद्रा करीब-करीब रोने को उद्यत थी।

धीरेन आपसी दीवार को फलांगने का प्रयास करता रहा चंद्रा उसे लगातार ऊँचा करने का परन्तु अंतत: धीरेन के धीरज और अनुरोध से चंद्रा की जिद हार गयी।

.....करवटों में रात काट देने के कारणवश परेशान मैं सच ही दरवाजा खड़कने से चौंक कर दरवाजा खोलने को लपक ली। दिल धड़क उठा था, ''जाने इंतजार की इस रात का अंत अब कैसा हो? मन कह रहा था, ''दरवाजा मत खोल, उस पार जाने क्या हो।'' परन्तु विवेक ने अंतरतम..... से उपहास किया, ''तेरे दरवाजा न खोलने से कौन सा समय रुक जायेगा!'' और इससे पहले कि मैं कुछ निर्णय लेती, ''चंद्रा दरवाजा खोलो ! सुबह हो गयी!''

मैंने लपकते हुए दरवाजा खोल दिया और मेरी हृदय गति रूकने को हो गयी क्योंकि अकेला वो आज भी नहीं था!.....आज फिर उसके पीछे कोई अंधेरे में खड़ा था!.....मैं गिरने को थी तभी धीरेन ने मुझे थाम लिया और उसके पीछे से मुस्कुराती उसकी मां निकल आयी, ''चलो बहू! आज मैं भी साथ तुम्हें लेने आयी हूँ।''

मैंने झुककर मां के पैर पकड़ लिये। सच ही सवेरा हो गया था।